मध्य प्रदेश में असली सवाल : क्या राजनीतिक परिवर्तन प्रदेश में सामाजिक बदलाव की राह खोलेगा ?

योगेंद्र यादव/श्रेयस सरदेसाई

मध्य प्रदेश बदलाव के कगार पर है। क्या विधानसभा चुनाव से यह बदलाव जोर पकड़ेगा? क्या कोई राजनीतिक परिवर्तन इस सूबे में एक गहरे मगर लंबे समय से अवरूद्ध चले आ रहे सामाजिक बदलाव की राह खोलेगा? या, हमें उस राजनीतिक पैंतरेबाज़ी का एक और दौर फिर से देखना होगा जो उन प्रभावशाली सामाजिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा किया करता है जो इस सूबे के गठन के बाद से ही शासन पर काबिज हैं? मध्य प्रदेश में चल रहे चुनावी घमासान में पूछा जाने वाला असली सवाल यही है और इस सवाल से अब आंखें चुराना मुमकिन नहीं क्योंकि यह आंखों में आखें डालकर हमारे सामने खड़ा है।

यहां हम जिस बदलाव की बात कर रहे हैं उसे लंबे समय तक रोक रखा गया है। हां, जब-तब ऐसे बदलाव की छिटपुट चमक जरूर दिखी है। मध्य प्रदेश के उत्तर में मौजूद पड़ोसी उत्तर प्रदेश ने 1990 के दशक में दलित-जन का उभार देखा और यह उभार बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) के जरिये मध्य प्रदेश की उत्तरीपट्टी में पहुंचा लेकिन जल्दी ही ठंडा पड़ गया। मध्य प्रदेश के पूरब में मौजूद पड़ोसी राज्य झारखंड और छत्तीसगढ़ ने आदिवासी-जन की राजनीति का जोरदार उभार और उसे प्रभावशाली बनते देखा। मध्य प्रदेश की आबादी में आदिवासी-जन की तादाद 21 फीसद है तो उम्मीद की जा सकती है कि इस सूबे में भी राजनीति झारखंड और छत्तीसगढ़ जैसी राह लेगी। लेकिन बड़ी राजनीतिक ताकतें गोंडवाना गणतंत्र पार्टी(जीजीपी) के उभार के आड़े आ गईं और उन्होंने इस पार्टी को अपने घेरे में ले लिया।

मध्य प्रदेश की आबादी में अन्य पिछड़ा वर्ग(ओबीसी) के लोगों की तादाद 50 प्रतिशत है लेकिन इस सूबे में अभी तक मंडल की राजनीति की धमक सुनायी नहीं दी ह। बीते दो दशकों में सूबे में खेती-किसानी का कायाकल्प हो चुका है- सूबे की छवि गढ़ने के क्रम में यही विजयगाथा सुनायी जाती रही है। लेकिन, किसान-संगठनों का प्रदेश की राजनीति पर कोई खास असर नहीं है भले ही साल 2017 में मंदसौर में हुई गोलीबारी के बाद किसान-संगठनों ने विरोध में धरना-प्रदर्शन किया हो।

लगातार भारतीय जनता पार्टी(बीजेपी) के हाथ लगती कामयाबी और देश में दो दशकों से जारी उसके राजनीतिक दबदबे ने सामाजिक बदलाव के इस खौलते पतीले के मुंह पर जैसे ढक्कन जड़ रखा है। साल 2003 यानी छत्तीसगढ़ के राज्य बनने के बाद हुए पहले चुनाव से ही बीजेपी इस सूबे(मध्यप्रदेश) में शासन में रही भले ही हर विधानसभा चुनाव में उसकी लोकप्रियता में कमी आती रही हो। साल 2018 में बीजेपी पांच सीटों के अन्तर से कांग्रेस से चुनाव हार गई लेकिन 15 माह की कमलनाथ सरकार कुख्यात ऑपरेशन कमल के जरिये गिरा दी गई और बागी ज्योतिरादित्य सिंधिया की मदद से बीजेपी फिर से सत्ता में आ गई।

सच कहें तो सूबे में लंबे वक्त तक सत्ता में रहने के बावजूद बीजेपी के पास उपलब्धियों के नाम पर दिखाने को ज्यादा कुछ नहीं है। सामाजिक-आर्थिक दशा का पता देने वाले कई संकेतक सूबे की बदहाली की तस्वीर पेश करते है। साल 2023 की शुरूआत में मध्य प्रदेश में पंजीकृत बेरोजगारों की संख्या 39 लाख थी। सरकारी नौकरियों में बहाली देरी से होती है और उनके साथ घोटाले का भूत लगा रहता है। सूबे में बेशक खेतिहर उत्पादन बेहतर हुआ है लेकिन किसान-आत्महत्याओं के मामले में यह राज्य चौथे स्थान पर है। सामंती तर्ज के जातिगत उत्पीड़न लगातार जारी है- इस सूबे में दलितों के विरुद्ध होने वाले अपराध की दर राष्ट्रीय औसत से ढाई गुणा ज्यादा है।

सेहत के मोर्चे पर मध्य प्रदेश नीति आयोग के संकेतक के हिसाब से 19 राज्यों के बीच बहुत नीचे यानी 17वें नंबर पर है। अखिल भारतीय स्तर पर देखें तो मध्य प्रदेश में शिशु मृत्यु-दर बहुत ज्यादा है और इस राज्य में चिकित्सकों की भी गंभीर कमी है। कामकाज का रिकार्ड ऐसा खराब होने के बावजूद बीजेपी शासन में बनी हुई है क्योंकि सूबे में उसका सांगठनिक आधार जनसंघ के जमाने से ही मजबूत रहा है जबकि पार्टी की मुख्य प्रतिद्वन्द्वी कांग्रेस की मशीनरी कमजोर साबित हुई है।

इस बार का चुनाव कुछ नया लेकर आने वाला है। बीते अट्ठारह सालों के शासन का बोझ और कामकाज के मोर्चे पर दिखाया गया निठल्लापन अब अपनी कहानी आप सुनाने लगा है। `मामाजी `कहलाने वाले मौजूदा मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान से उकताहट साफ दीख रही है। इस बीच, कांग्रेस के लिए सारा कुछ अपने हक में जाता दीख रहा है। एक ऐसे राज्य में जहां कांग्रेस पार्टी गुटबंदी के बीच कई हिस्सों में बिखरी रहती आयी है, बीते पांच सालों में कमलनाथ के निर्विवाद नेतृत्व ने उसे पहले तुलना में इस बार कहीं ज्यादा एकजुट कर दिखाया है। कांग्रेस को लोगों की सहानुभूति भी हासिल है क्योंकि 2018 में चुनाव जीतने के बावजूद चोर-दरवाजे से उसे सत्ता से बेदखल किया गया।

कुछ गहरे उतरकर देखें तो जान पड़ेगा कि सतह के नीचे ही नीचे सामाजिक परिवर्तन की शक्तियां सक्रिय हैं और बदलाव का लावा खौल रहा है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम को कमजोर करने के खिलाफ मध्य प्रदेश में 2018 में दलित-जन ने जोरदार प्रतिरोध किया और इससे सूबे में दलित-एक्टिविज्म की एक नई लहर चली। जय आदिवासी युवा शक्ति (जेएवायएस) नाम से आदिवासी नेतृत्व की एक नई पीढ़ी सामने आयी है। आपसी फूटमत के बावजूद जेएवायएस के विभिन्न धड़े पुराने नेतृत्व को उखाड़ फेंकने की जतन में लगे आदिवासी युवाओं की जोर मारती महत्वाकांक्षाओं की नुमाइंदगी करते हैं। ओबीसी महासभा जैसे संगठनों के नेतृत्व में मध्य प्रदेश में ओबीसी की राजनीति भी खामोशी से आगे आई है और यह उभार ओबीसी के ऊपरी तबके तक ही सीमित नहीं रहा है। साल 2020 के राष्ट्रव्यापी किसान-आंदोलन की गूंज मध्य प्रदेश में भी सुनायी दी थी।

ये सभी आंदोलन अपने मिजाज में सत्ता-विरोधी हैं और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तथा बीजेपी की विचारधारा के विरुद्ध भी। जिम्मा कांग्रेस का था कि वह इस नई सामाजिक ऊर्जा को समेटे और सामाजिक बदलाव का राजनीतिक वाहक बने। इस नाते, मध्य प्रदेश के इस चुनाव में कांग्रेस के पास खोने के लिए बहुत कुछ था।

लेकिन, चुनाव से पहले के सर्वेक्षणों में ऐसा नहीं झलकता। हमने मध्य प्रदेश में जून माह से अब तक के कुल 16 सर्वेक्षणों को खंगाला। इनमें से आठ सर्वेक्षणों में कांग्रेस को बहुमत के आंकड़े (116 सीट) के बहुत करीब या इसके पार जाते बताया गया है जबकि सात अन्य सर्वेक्षणों में बीजेपी को आगे दिखाया गया है। इन सबसे अलग, सिर्फ एक सर्वेक्षण (सी-फोर के) का आकलन है कि मध्य प्रदेश में कांग्रेस को कर्नाटक सरीखा

बहुमत मिलने जा रहा है। इन तमाम सर्वेक्षणों पर गौर करें, चाहे सर्वेक्षण किसी भी समय किया गया हो, तो एक बात यह निकलकर सामने आती है कि बीजेपी का औसत वोट शेयर 44 प्रतिशत का है जबकि कांग्रेस का वोटशेयर 43 प्रतिशत का। हिसाब-किताब लगायें तो सर्वेक्षणों में कांग्रेस को ज्यादा यानी औसतन 117 सीटें मिलती दिखती हैं जबकि बीजेपी को इससे कम यानी औसतन 110 सीटें।

परस्पर भिन्न निष्कर्षों वाले इन सर्वेक्षणों को एक साथ मिलाकर चुनाव के नतीजों के बारे में भविष्यवाणी करना बेवकूफी होगी। इन सर्वेक्षणों को ब्रह्म-लेख नहीं माना जा सकता। चाहे जैसे भी देखें, दोनों पार्टियों के बीच का अनुमानित अन्तर उस मार्जिन ऑफ एरर के दायरे में ही है जो हर सर्वेक्षण के भीतर रहता ही है। आज की तारीख में हम बस यही कह सकते हैं कि कांग्रेस को इस चुनावी मुकाबले में चंद माह पहले की तुलना में हल्की बढ़त हासिल हो गई है। लेकिन, ये नहीं कहा जा सकता कि मौजूदा सत्ताधारी पार्टी चुनावी मुकाबले में चारो खाने चित्त होने जा रही है जिसकी चंद माह पहले तक वास्तविक संभावना दिख रही थी।

क्या कांग्रेस ने जी-जान लगाया है

मध्य प्रदेश का ये चुनाव चंद वैसे चुनावों में शुमार किया जायेगा जिनमें परिणाम चुनाव-अभियान के दौरान तय होते हैं। कांग्रेस ने सूबे में अगस्त माह से जोरदार अभियान चला रखा है। इसमें चौहान सरकार की नाकामियों को गिनाया जा रहा है, खासकर आर्थिक मोर्चे पर मिली नाकामी को, जैसे- राज्य पर बढ़ता कर्ज का बोझ, युवाओं की बेरोजगारी, प्रश्नपत्रों के 'लीक' होने के मामले, नियुक्त-प्रक्रिया के गड़बड़-घोटाले (व्यापम/ईएसबी) और किसानों की दुर्दशा। प्रदेश का कांग्रेस-नेतृत्व कर्नाटक में चले पार्टी के चुनाव-अभियान से सबक लेते हुए मध्य प्रदेश में भी बीजेपी सरकार पर '50 प्रतिशत की कमीशनखोरी' के आरोप लगा रहा है। साथ ही, भ्रष्टाचार के चलन के उदाहरणों जैसे पटवारी नियुक्ति घोटाला और महाकाल लोक कॉरिडोर का घटिया निर्माण-कार्य जैसे मुद्दों को भी उछाला जा रहा है। दरअसल, पार्टी ने अगस्त में घोटाला-शीट नाम का एक दस्तावेज जारी किया जिसमें सूबे में बीजेपी के 18 सालों के शासन-काल में हुए कथित 254 घोटालों की फेहरिस्त दी गई है।

लेकिन, ये भी मुमकिन है कि कांग्रेस ने मध्य प्रदेश में भीतर ही भीतर खदबदा रही सामाजिक बदलाव की ताकतों को अपने साथ करने में पर्याप्त जोर नहीं लगाया हो। ऐसा होने पर बीजेपी को जोरदार पटखनी दी जा सकती थी। बेशक कांग्रेस पार्टी ने इस बार ओबीसी तबके के 65 उम्मीदवारों को टिकट दिया है (पिछली बार से ज्यादा लेकिन लगभग उतना ही जितना कि इस बार बीजेपी ने दिया है) लेकिन पार्टी पर अगड़ी जाति के लोगों का प्रभुत्व बना हुआ है। कांग्रेस-नेतृत्व ने जाति-जनगणना का मुद्दा उठाया और ओबीसी को नौकरी में 27 प्रतिशत आरक्षण देने का वादा किया है लेकिन अब भी यह चुनाव में बड़ा मुद्दा नहीं बन पाया है। लोकनीति-सीएसडीएस के सर्वेक्षण से पता चलता है कि मतदाताओं की एक बड़ी तादाद (44 प्रतिशत) जाति-जनगणना के पक्ष में है और लगभग एक चौथाई (24 प्रतिशत) इसके विरुद्ध हैं जबकि एक बड़ा तबका (32 प्रतिशत) जाति-जनगणना के मुद्दे पर मौन है। लोकनीति-सीएसडीएस के सर्वेक्षण के तथ्य बताते हैं कि दलित-जन के वोट पर कांग्रेस की पकड़ बरकरार है और आदिवासी तथा मुस्लिम मतदाताओं के बीच पार्टी ने अपनी स्थिति सुधारी है लेकिन ओबीसी मतदाताओं के बीच पार्टी बीजेपी से बड़े अन्तर से पीछे है।

ऐसा लगता है कि बीजेपी ने चौहान सरकार के खिलाफ लोगों के सत्ता-विरोधी रुख को भांपकर चुनावी मुकबले में वापसी कर ली है। पार्टी ने मुख्यमंत्री पद के लिए अपना उम्मीदवार घोषित करने में आनाकानी की है।

प्रधानमंत्री अपनी चुनावी रैलियों में शिवराज सिंह चौहान का नाम तक नहीं लेते। जहां तक मौजूदा मुख्यमंत्री का सवाल है, गद्दी बचाये रखने के लिए वे महिला मतदाताओं पर बहुत ज्यादा निर्भर नजर आ रहे हैं। अक्टूबर माह से लगभग वंचित तबके की 21-60 आयु-वर्ग की 1.3 करोड़ महिलाओं को लाडली बहना योजना के अंतर्गत बैंक खाते में 1,250 रुपये दिये जा रहे हैं। यह 2023 के मार्च में घोषित 1000 रुपये की किस्त से ज्यादा है। दरअसल, चुनाव से 10 दिन पहले, 7 नवंबर को इन महिलाओं के बैंक खाते में एक नई किस्त जमा की गई। दूसरी तरफ, कांग्रेस ने नारी सम्मान योजना का वादा किया है जिसमें महिलाओं को 1500 रुपये मासिक तथा 500 रुपये की दर से गैस सिलेंडर देने की बात है।

सर्वेक्षणों से पता चलता है कि महिला मतदाताओं में बीजेपी को तनिक बढ़त हासिल है लेकिन वैसी निर्णायक बढ़त नहीं जैसी कि पार्टी ने उम्मीद लगायी होगी। हां, सूबे में बीजेपी का सांगठनिक आधार मजबूत है और पार्टी की मदद के लिए हर वक्त मौजूद है।

किन बातों का दावा किया जा सकता है

बेशक कांग्रेस चुनावी मुकाबले में बढ़त पर दीख रही है लेकिन इस संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि दोनों पार्टियों का वोट शेयर समान रहे। ऐसी स्थिति में बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगा कि हासिल वोट किस हद तक सीट-दिलाऊ साबित हुए।

इस मामले में कांग्रेस को बढ़त हासिल है। साल 2018 में कांग्रेस वोट शेयर के मामले में बीजेपी से 0.1 प्रतिशत से पीछे थी लेकिन उसने बीजेपी से पांच सीटें ज्यादा जीतीं। इस बार के चुनावी मुकाबले में शहरी और ग्रामीण मतदाताओं के रुझान के बीच अन्तर ज्यादा का है और यह कांग्रेस के पक्ष में जा सकता है। सीएसडीएस के सर्वेक्षण के मुताबिक ग्रामीण इलाकों में कांग्रेस को बीजेपी पर 5 प्रतिशत वोटों की बढ़त हासिल है जबकि शहरी इलाके में बीजेपी को कांग्रेस पर 20 प्रतिशत वोटों की बढ़त है।

जरूरी नहीं कि ये आकलन एकदम सही हो, लेकिन इनसे एक संभावना का संकेत तो मिलता ही है। प्रदेश में ग्रामीण अंचल के सीट ज्यादा हैं (175-200 के करीब, निर्भर इस बात पर करता है कि आप ग्रामीण अंचल की परिभाषा क्या करते हैं) बनिस्बत शहरी क्षेत्र के सीटों (30-55 के बीच) के। अगर बीजेपी शहरी इलाके की सीटें बिल्कुल झाड़ू फेरने के अंदाज में बड़े अन्तर से अपनी झोली में खींच ले जाती है तो भी कांग्रेस के पास ग्रामीण इलाके में सीटों की बड़ी तादाद पर छोटे अन्तर से जीत दर्ज करके बीजेपी से आगे रहने की संभावना बरकरार रहने वाली है। साल 2018 में कांग्रेस को मध्य प्रदेश के ग्रामीण अंचल में बीजेपी पर 1 प्रतिशत वोटों के अन्तर से बढ़त हासिल थी तो भी पार्टी ने अपने प्रतिद्वन्द्वी से 16 सीटें ज्यादा जीती थीं।

बेशक हम जनादेश की प्रकृति और सीटों के अन्तर के बारे में दावे के साथ कुछ नहीं कह सकते लेकिन एक बात का दावा निश्चित तौर पर किया जा सकता है : जनादेश का असर सीटों के अन्तर से कहीं ज्यादा रहने वाला है। मध्य प्रदेश का जनादेश 2024 के लोकसभा चुनावों के लिए बनने वाले समीकरण और मनोदशा को तो प्रभावित करेगा ही, साथ ही इस जनादेश से ये भी तय होना है कि मध्य प्रदेश में जो सामाजिक परिवर्तन लंबे समय से घटित होने के इंतजार में है, वह कौन-सी राह लगने वाला है।

(योगेन्द्र यादव भारत जोड़ो अभियान के राष्ट्रीय संयोजक हैं। श्रेयस सरदेसाई भारत जोड़ो अभियान से जुड़े एक सर्वेक्षण शोधकर्ता हैं। यहां व्यक्त विचार निजी हैं।)